बिहार में सामाजिक आंदोलन तथा चुनावी राजनीति के इतिहास का एक अध्ययन

NAVEEN CHANDRA KUMAR
Research Scholar
UGC-NET,
Department of History,
B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur.

Abstract :
स्वतंत्रता के बाद बिहार की सामाजिक आंदोलन और राजनीति पर एक सरसरी निगाह डालें, तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह तीन चरणों में विभाजित है। सामाजिक आंदोलन का प्रथम चरण (1946–47) में उच्च–वर्गीय अगड़ी या ऊंची जातियों की वर्चस्व वाली कांग्रेस का पूर्ण प्रभुत्व राज्य की राजनीति पर पाते हैं और वह सत्ता के शिखर पर प्रतिष्ठित हुई दिखती है। सामाजिक आंदोलन का द्वितीय चरण (1967–1990) में हम बिहार की राजनीति को संक्रमण की अवस्था में पाते हैं, जहां कांग्रेस के साथ उच्च वर्गीय अगड़ी जातियों के अवसान और धीरे–धीरे, लेकिन पैनेपन के साथ राजनीति में मध्यम–वर्ग का अभ्युदय होंता है। सामाजिक आंदोलन का तीसरा चरण (वर्ष 1990 और उसके पश्चात्) प्रथम चरणण का व्युतक्रम है, जो बिहार की राजनीति में कांग्रेस के साथ–साथ उच्च–वर्गीय अगड़ी जातियों के हाशिये पर धकेले जाने की कहानी कहता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य बिहार में सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन को समझना और इसके प्रत्येक चरण पर गंभीरतापूर्वक और बारीकी के साथ दृष्टिपात करना, जो जमीनी स्तर पर हो रहे सामाजिक प्रक्रियाओं और उसके अंतर्दवंद्व से प्रभावित होता हुए प्रतीत होता हैं। यह बिहार के सामाजिक आंदोलन और राजनीतिक समीकरणों में एक आदर्श बदलाव की ओर संकेत करता है।

Keywords : राजनीतिक दल, जातीय समीकरण, सामाजिक न्याय, शोषणवाद, सत्ता।

परिचय :

स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजित आंदोलन के प्रथम चरण (1947–1967) में जैसा कि यह सर्वविदित तथ्य है कि भारत के स्वतंत्रता–संघर्ष के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रभावशाली भूमिका रही थी। देश को औपनिवेशिक शासन की दासता से मुक्त कराने की अपनी कथित भूमिका के कारण अंततः यह पार्टी भारत में या इसके किसी भी हिस्से में ब्रिटिश शासन के राजनीतिक उत्तराधिकारी के रूप में रूपांतरित हो गयी। अन्य राजनीतिक दलों, जैसे – वामदलों की लोकप्रियता और जनाधार मुख्यतः बिहार के कुछ हिस्सो जैसे–बेगूसराय, मुजफ्फरपुर, मधुबनी, गया और सीतामढ़ी जिलों में ही केंद्रित था, किन्तु वे इसे समेकित करने में असफल रहे। इस प्रकार वास्तविक अर्थों में बिहार की तत्कालीन राजनीति में कांग्रेस के विरूद्ध किसी सशक्त विपक्ष का अस्तित्व कमोबेश नहीं था। इसने लगभग संपूर्ण राजनीतिक क्षितिज पर अपना कब्जा कर लिया था। वर्ष 1962 तक इस पार्टी ने सूबे में कई कारणों से जैसे कि संगठित विपक्ष की अनुपस्थिति के साथ–ही–साथ बिहार के मुख्यमंत्री डॉ. श्रीकृष्ण सिंह के नेतृत्व की आभा तथा मतदान होने की दर कम होने के कारण बिहार के लगभग समस्त राजनीतिक क्षितिज पर अपना वर्चस्व

और एकाधिकार स्थापित कर लिया था और इसके साथ ही सत्ता के निरंतर उपभोग में बेसुध रही। हालांकि, कांग्रेस पार्टी में ऊंची जातियाँ ब्राह्मणों, राजपूतों, भूमिहारों और कायस्थों का वर्चस्व था। किन्तु, ऐसा नहीं है कि अन्य जातियों और समुदायों ने इसका समर्थन नहीं किया; बल्कि अनुसूचित जातियां (अछूत) कांग्रेस के प्रति पूर्ण रूप से प्रतिबद्ध थीं। क्योंकि, यह कांग्रेस ही थी, जिसने महात्मा गांधी के नेतृत्व में उनकी गरिमा और स्वाभिमान के लिए संघर्ष किया था और संभवतः इसी के प्रभावस्वरूप उनपर होने वाले और साथ ही संभावित अनेक प्रकार के अत्याचारों से मुक्ति के लिए संविधान में अनेक प्रावधान उपबंधित किये गये थे। अस्पृश्यता को व्यवहार में लाना एक दंडनीय अपराध माना गया। केंद्र और राजय की विधायिकाओं में इन जातियों के समुचित प्रतिनिधित्व के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गयी। अनेक सार्वजनिक क्षेत्रों जैसे शैक्षणिक संस्थानों, और सरकारी नौकरियों में इनको आरक्षण देने के लिए संविधान में अनेक प्रावधान किये गये। इन जातियों से भेद–भाव करने के खिलाफ भी अनेक कानून बनाये गये। इन सभी प्रावधानों और उपायों को 'कांग्रेस के द्वारा दलितों को एक उपहार' के रूप में प्रचारित किया गया और इसके परिणामस्वरूप पूर्व में अछूत के रूप में संबोधित की जाने वाले अनुसूचित जातियां कांग्रेस को समर्थन देने और इस पार्टी के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दोहराने के लिए लामबंदी होने लगीं (फ्रंकेल, 1989)। मुस्लिमों के बड़े भाग ने भी कांग्रेस को समर्थन दिया, किन्तु पार्टी में और साथ–ही–साथ सरकार में उनका प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं था। विभाजन के पश्चात् मुस्लिम देश के प्रति गैर–वफादार होने के आरोप का बोझ उठाते रहे थे। कई हिंदुओं द्वारा उनकी देश के प्रति वफादारी पर प्रश्न उठाये गये। इसके अलावा वास्तविक अर्थों में कोई भी प्रमुख और समर्थ राजनीतिक संगठन नहीं था, जो तत्कालीन राजनीतिक परिवेश में कांग्रेस के विकल्प के रूप में स्वयं को पेश कर सके। संक्षेप में उनके पास कांग्रेस के साथ जाने और इसके लिए मतदान करने के अलावा कोई चारा नहीं था। इस तथ्य के बावजूद कि कांग्रेस उच्च–वर्गीय अगड़ी जातियों और कुलीन भू–स्वामियों के वर्चस्व वाली राजनीतिक पार्टी थी। इसने कुछ ऐसे सुधारवादी नीतिगत कदम उठाये, जो उच्च–वर्गीय अगड़ी जातियों के हितों के प्रतिकूल हो सकते थे। जमींदारी–उन्मूलन और भूमि–सुधार जैसे कदम इस परिप्रेक्ष्य में कुछ ऐसे ही उदाहरण के रूप में उल्लिखित किये जा सकते हैं। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ), 1952–1953 के आंकड़ों के अनुसार, ग्रामीण क्षेत्रों के शीर्ष 10 प्रतिशत परिवारों का स्वामित्व कुल जमीन के 52.36 प्रतिशत भाग पर था और नीचे के 40 प्रतिशत परिवारों के अधिकार में मात्र कुल जमीन का 1. 25 प्रतिशत था। अधिकांशतः 10 प्रतिशत परिवार, जिनके पास कुल भूमि के करीब आधे भाग पर स्वामित्व था, उच्च वर्गीय अगड़ी जातियों से आते थे। हालांकि, कुछ मुस्लिम भी थे, जिनका स्वामित्व एक बड़े भू–भाग पर था। लेकिन, वे अपवाद स्वरूप ही कहे जा सकते थे। इस अवधि में चूंकि अगड़ी जातियों का अधिकार कुल भूमि के एक बहुत बड़े भाग पर था। लेकिन, वे अपवाद स्वरूप ही कहे जा सकते थे। इस अवधि में चूंकि अगड़ी जातियों का अधिकार कुल भूमि के एक बहुत बड़े भू–भाग पर था, इसलिए एक मालिक–मजदूर पर आधारित मतदान–प्रणाली का विकास हुआ, जिसमें जोतेदार/पट्टेदार और कृषक–मजदूर भू–स्वामियों के निर्देशानुसार मतदान करते थे। इसलिए भूमि–सुधार से सम्बंधित कोई भी कानून उच्च–वर्गीय अगड़ी जातियों के हितों और कांग्रेस की राजनीतिक संभावनाओं को हानि पहुँचा सकती थी, उसे खतरे में डाल सकती थी। हालांकि आर्थिक, शैक्षणिक तथा सामाजिक विकास के प्रतिमानों के दृष्टिकोणों से बिहार सर्वाधिक पिछड़ा हुआ राज्य है। किन्तु, राजनीतिक दृष्टिकोण से अनेक महत्वपूर्ण राज्यों में से एक है। सिर्फ इसलिए नहीं कि इसके अंतर्गत 54 लोकसभा सीटें (झारखंड के

अलग होने के बाद 50 लोकसभा सीटे) हैं, बल्कि इसलिए भी कि लोकतांत्रीकरण की एक दीर्घकालीन प्रक्रिया ने इस राज्य के लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सजग, सतर्क तथा इसकी सुरक्षा के लिए संघर्ष करने की चेतना पैदा की है। पिछड़ी जातियों में यह चेतना 1970 के मध्य से प्रारंभ हुई और उत्कर्ष पर पहुंची– लालू प्रसाद यादव के अभ्युदय और सूबे के मुख्यमंत्री बनने से 1990 के दशक के बीच में जब लालू प्रसाद यादव ने अपने कार्यकाल के दौरान समाज के निम्न–वर्गों विशेषकर दलितों के लिए कुछ कल्याणकारी योजनओं की शुरूआत की, तो वे भी अपनी राजनीतिक महत्ता और कथित परिवर्तन को समझने लगे। अन्यथा उन्हें ऐसी जातियों के रूप में रेखांकित किया जाता था जो अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति उदासीन तो होती ही थीं, साथ–ही–साथ अपनी मानवीय गरिमा को बचाये रखने में समर्थ नहीं होती थी। आशय यह कि इन जातियों को कथित रूप से पिछड़े हुए मानवों के एक झुण्ड के रूप में देखा जाता था, किन्तु अब इन नयी आकार लेती स्थितियों में वे अपनी राजनीतिक उपयोगिता और परिवर्तनशील स्थितियों के प्रति जागरूक होने लगे। वर्ष 11990 में कांग्रेस की हार ने बिहार की राजनीति में एक युग का अंत कर दिया। ''इस युग की सबसे अच्छी व्याख्या इसे 'सामंतवादी लोकतंत्र' के रूप में संबोधित करके की जा सकती है'' (वित्सोए, 2011)। कांग्रेस पाटी भूमि–सुधार, स्वतंत्रता, गरीबी–निवारण, सामाजिक–अत्याचार, भेद–भाव और अन्य पिछड़ी जातियों एवं दलितों में व्याप्त रोष को समाप्त करने के अपने वादे को पूरा करने में असफल रही, जबकि भागलपुर दंगों के कारण तो वास्तव में मुस्लिमों के बीच कांग्रेस के प्रति घृणा और उपेक्षा के भाव ने अपना डेरा जमा लिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम समुदाय भी उसके जनाधार से छिटकने लगे थे। एक ऐसे राज्य में, जहां एक लंबे समय तक राजनीतिक शक्तियों पर उच्च–वर्गीय अगड़ी जातियों का एकाधिकार या दबदबा रहा था, अब तत्कालीन राजनीतिक परिवेश में उच्च–वर्गीय जातियों की मध्य–वर्गीय जाति समूहों के साथ सत्ता में साझेदारी करने की सहमति ने नवीन सामाजिक–आर्थिक प्रक्रियाओं को जन्म दिया, जिससे नयी उभरती हुई सामाजिक शक्तियां पुनर्गठित हुई। बिहार में यह प्रक्रिया 1970 के मध्य में शुरू हुई। शुरू में यह थोड़ी लड़खड़ाई, लेकिन 1990 के पहली छमाही आते–आते यह अपने उत्कर्ष पर थी। लेकिन, जल्दी ही 1990 के मध्य के दौर से इन सामाजिक और राजनीतिक ताकतों में विघटन की प्रक्रिया शुरू हो गयी और फलतः मध्य–वर्गीय जातियां अब एक राजनीतिक–समूह नहीं बनी रह सकीं। वस्तुतः यह कहने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए कि यद्यपि 1980 के मध्य और 1990 के दशकों के दौरान विशेषकर मध्य बिहार (विभाजन के पश्चात् दक्षिण बिहार) में हुए सामाजिक–समूहों के पारस्परिक संघर्ष ने निश्चित रूप से समाज के सक्रिय वंचित तबकासें में सशक्तिकरण की चेतना उत्पन्न की। तथापि इस कथित संघर्ष से सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में कोई भी बड़ा बदलाव नहीं आया, जो निश्चित रूप से उल्लेखनीय हो।

''बिहार में 1930 और 1940 के दशक के दौरान कृषक–वर्ग में एक नवीन चेतना का संचार हुआ, साथ–ही–साथ समाजवादियों ने भी अन्य पिछड़ी जातियों को राजनीतिक रूप से लामबंद होने को प्रेरित किया। संभवतः यही कारण था कि बिहार ही एकमात्र ऐसा प्रथम राज्य था, जिसने वर्ष 1950 में जमींदारी–व्यवस्था के उन्मूलन का न केवल सैद्धांतिक निर्णय लिया था, बल्कि उसे अमली–जामा पहनाते हुए संबंधित कानून को लागू भी कर दिया था। किन्तु अनेक कारणों की वजह से इसे पर्याप्त, समुचित और व्यवस्थित ढ़ंग से व्यवहार में नहीं लाया गया। किन्तु फिर भी राज्य में जो थोड़ी बहुत भूमि का पुनर्वितरण हुआ था, उसका लाभ उनलोगों ने उठाया था, जिनके पास थोड़ी बहुत भूमि पहले से ही थी,

विशेषकरण अन्य पिछड़ी जातियों के ऊपरी वर्ग इससे अपेक्षाकृत अधिक लाभान्वित हुए। दरअसल, बिहार में कांग्रेस के वर्चस्व को बड़ी चुनौती 1930–40 के मध्य में 'त्रिवेणी संघ', जो यादव, कोइरी, कुर्मी जैसी जातियों का गठबंधन था, जिसे दलित जातियों का भी समर्थन प्राप्त था। 1960 के दशक के दौरान इस त्रिवेणी संघ के कांग्रेस विरोध से जो राजनीतिक उबाल पैदा हुआ, उसने लोहियावादियों को वह उर्वर भूमि प्रदान की, जिस पर उन्होंने अन्य पिछड़ी जातियों को लामबंद कर करना शुरू कर दिया।

वर्ष 1970 की शुरूआत में ही एक अन्य चमत्कारिक नेता जगदेव प्रसाद का अभ्युदय हुआ था, जो समाज के कोइरी जाति के प्रतिनिधि माने जाते थे। जगदेव प्रसाद का जनाधार मूलतः अन्य पिछड़ी जातियों और दलितों के बीच ही अधिक था और उनके अनुयायी भी इन्हीं जातियों से ही आते थे। अपनी अपार लोकप्रियता और जनवादी–चरित्र के कारण वे 'बिहार के लेनिन' के रूप में प्रसिद्ध थे। मध्य–बिहार में उन्होंने जिस आंदोलन का नेतृत्व किया था, उसने राज्य में ऊंची जातियों के भू–स्वामियों के बीच भययुक्त शंकार को जन्म दिया और निश्चित रूप से वे इस आंदोलन और उनको भय और संदेह की दृष्टि से देख रहे थे और स्वाभाविक रूप से अपने लिए एक बड़ा खतरा मान रहे थे। इस समय बिहार वास्तविक अर्थों में सामाजिक और राजनीतिक वर्चस्व की लड़ाई की रणस्थली के रूप में तब्दील हो चुका था, जो ऊंची जातियों और अभी हाल में उदित हो रहे अन्य पिछड़ी जातियों के ऊपरी तबके की जातियों के बीच था। दरअसल, यह वह समय भी था, जब बिहार में छात्र–आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था।

बिहार आंदोलन और आपातकाल : वर्ष 1974 का बिहार आंदोलन वास्तविक अर्थों में बिहार की तत्कालीन कांग्रेसी सरकार में व्याप्त कथित अराजकता और भ्रष्टाचार के खिलाफ छात्रों द्वारा शुरू किया गया एक आंदोलन था। इस आंदोलन में सरकार की नीतियों के विरूद्ध विरोध–प्रदर्शनों की एक श्रृंखला बनती गयी। अनेक जगह विरोध–प्रदर्शन होने लगे। इन विरोध–प्रदर्शनों के नेतृत्वकर्ता थे–दिग्गज गांधीवादी और समाजवादी जयप्रकाश नारायण। कालांतर में यह आंदोलन तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार के विरोध में रूपांतरित हो गया। अन्य पिछड़ी जातियों ने इस आंदोलन का दो बड़े कारणों से समर्थन किया। पहला कारण तो यह था कि वे ऊंची जातियों की वर्चस्व वाली कांग्रेस पार्टी को राज्य की सरकार से हटाना चाहते थे और दूसरी बात यह थी कि अन्य पिछड़ी जातियों के सशक्तिकरण की जो योजना थी, और इससे संबंधित जो लक्ष्य निर्धारित किये गये थे, उनका जयप्रकाश नारायण की विचारधारा के साथ तारतम्य था। इसलिए, तथाकथित जातियों को ये प्रतीत हुआ कि इस विचारधारा के माध्यम से ही उनके राजनीतिक लक्ष्यों और हितों का तुष्टिकरण हो सकता है। इसलिए, उन्होंने इस आंदोलन को अपना समर्थन देने का निश्चय किया।

संदर्भ :–

1. विट्स, जेफरी (2011) कारप्शन ऐज पॉवर : कॉस्ट एंड पॉलिटिकल इमैजिनेशन ऑफ दि पोस्टकोलोनिअल स्टेट अमेरिकन एथनोलॉजिस्ट, 38 (1)
2. कुमार, संजय; आलम, सन्जीर एंड जोशी, धनंजय (2008, जनवरी–जून) कॉस्ट डाइनैमिक्स एंड पॉलिटिकल प्रॉसेस इन बिहार, जर्नल ऑफ इन्डियन स्कूल ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी, 20 (1 एवं 2), पृष्ठ 1 रीट्रीव्ड फ्रॉम : http//www.ispepune.org.in/jis108pdg / Bihar.pdf
3. सिन्हा, अरुण, (2011) नीतीश कुमार एंड दि राइज ऑफ बिहार, दिल्ली : पेंगुइन इंडिया

4. अहमद, सरूर (2010), नीतीश विक्ट्री कॉस्ट (ई) इन अ डिफरेन्ट मोल्ड Two circles.net रीट्रीव्ड फ्रॉम : http//twocircles.net / 2010nov27/nitish 2 izfr'kr 80 izfr'kr 99s-victory-caste-different -mould.html#VWgG5NKqqko

5. मिश्रा, एलके (2013) ऑफ्टर इनिशिअल फेलिअर, नीतीश इज नाउ सेटिंग इन्डिया स पॉलिटिकल एजेंडा, टाइम्स ऑफ इंडिया, रीट्रीव्ड फ्रॉम : http://timesof india.indiatimes.com/city/patna/After-initial-failure-Nitish-is-now-setting-Indias-political-agenda/articlesshow/19608081.cms

6. थॉमस, केवी (2014) लेफ्ट विंग एक्सट्रिमिज्म एंड हयूमन राइट्स, नई दिल्ली : सेज पब्लिशर्स

7. मिश्रा, वंदिता, (2011) दि लॉन्ग रोड टू नूतन बिहार, सेमिनार मैगेजिन, इश्यू ऑन 620, रीट्रीव्ड फ्रॉम % http://www.india-seminar.com/2011/620/620 vandiata mishra.htm

8. झा, मनीष एंड पुष्पेंद्रा (2012) गवर्निंग कॉस्ट एंड मैनेजिंग कॉन्फ्लिक्ट्स इन बिहार पॉलिसीज एंड पैक्टिसेज, इश्यु नंबर 48, पृष्ठ 6–7 रीट्रीव्ड फ्रॉम % http://www.mcrg.ac.in/PP48.pdf

9. प्रसाद, पीएच (1987) अग्रेरियन वॉयलेंस इन बिहार, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 22 (22), 847–852